ज़ेन हायकू

भूमिका

ज़ेन, बौद्ध धर्म की अनेक शाखाओं में से, एक शाखा का नाम है। बुद्ध के शिष्य- महाकाश्यप के शिष्यत्व की श्रेणी में बोधिधर्म का नाम आता है। बौद्ध-धर्म के प्रसार के लिये वे चीन गये थे। वहॉ ताओ धर्म पहले से ही प्रचलित था। दोनों के मिलन ने एक नये धर्म-ज़ेन को जन्म दिया।ध्यान, से अपना नाम गृहण करनेवाला यह ज़ेन धर्म तब से आज तक आध्यात्मिक पथ के पथिकों का प्रिय धर्म रहा है। ताओ की तरह कर्म में रत रहना है, पर बुद्ध की तरह मन को बिसर भी जाना है। यह धर्म किसी सिद्धांत या पद्धति में भरोसा नहीं करता, केवल अपने ही अंदर खोदना है, खोजना है। तभी ज़ेन गुरू, गुरू

की तरह नहीं, मित्र की तरह व्यवहार करता है। विचारों से परे होने में, चिल्ला कर, आघात पहुंचा कर मदद करता है। कोयन- वह पहेली जिसका कोई ज़वाब नहीं होता, पूछता है। यदि शिष्य उत्तर न देकर चुप रह जाता है या बात बदल देने की कोशिश करता है तो वह गंतव्य पर पहुंच गया, जान लेता है। तन-मन को छोड़ कर, अपने सही रूप को पहचाननेवाला कण-कण में उसे देखने में समर्थ हो गया है, यह जान कर उसे संतोष होता है कि मेरा कार्य, इसके संदर्भ में समाप्त हुआ। गुरू-शिष्य का संबंध भी यहॉ परंपरागत नहीं है। शिष्यों के प्रश्नों का ज़वाब न तो एक ही तरह से दिया जाता है, नहि पूरा ज़वाब ही दिया जाता है। हर व्यक्ति,शिष्य की प्रकृति अलग होगी,तो गुरू का ज़वाब भी अलग-

अलग होगा। फिर वह ज़वाब पूरा भी नहीं होगा। गुरू केवल इशारा मात्र करेगा। शिष्य को अपने ही अनुभव से, अपना ही उत्तर खोजना होगा। किसी की नकल से, उधारी से धर्म नहीं मिलता। गुरू सहारा बन सकता है, खोजना तो तुम्हें स्वयं ही होगा। अगर स्वयं में नहीं खोज पाते तो कहीं और नहीं मिलेगा और अगर एक बार अपने में मिल गया,फिर तो सबमें,सभी जगह वही दिखता है। अतएव खाली होकर अस्तित्व में रहो,उससे कुछ पूछो मत, केवल उसको सुनो, देखो। गम्भीर न बनो, अमनी दशा में रहो, बुद्ध भी मन में न रहें, तभी तुम्हारा झरना फूटेगा। समय-असमय न देखो,ध्यान का बीज डाल दो, न जाने भविष्य में कब खिल उठे।

सजगता, अपने कार्यों, विचारों का स्वयं दृष्टा होना बौद्ध एवं ताओ दोनों ही धर्म बताते हैं,पर ज़ेन ने स्वानुभूति पर बहुत ज़ोर दिया है। स्मृति से नहीं,अंतर अनुभूति से, बिना सोच-समझ को बीच में लाये, किसी प्रश्न का ज़वाब या किसी कार्य की प्रतिक्रया हो। जो अंदर हो, वही बाहर भी हो,कोई दुई न हो, भेद-भाव न हो। अपने को जैसा पाते हो, वैसा ही स्वीकार करो और संसार को भी।

सब कुछ वैसा ही है, जैसा होना चाहिये था। अस्तित्व को धन्यवाद दो, यही सबसे बड़ी प्रार्थना है। ज़ेन में रहना तो एक खेल खेलना है, जहॉ अपने को भूल जाना है और जो कुछ हो रहा है, उसके प्रति चेतन,सजग रहना है, बिना पक्ष या विपक्ष में हुए उसे केवल देखना है। स्वयं हल्के, भारमुक्त हो जाओ,

जैसे कि कोई सत्ता ही नहीं है तुम्हारी। यह साधना सूर्योदय, सूर्यास्त, फूल-पत्ते, चिड़ियों की आवाज़ों के प्रति सजग रहने से शुरू कर सकते हैं। हमें केवल देखना भर है,मतलब निकालना या निर्णय लेने-देने का काम न करें। धीरे-धीरे यह कला मन पर भी लागू कर लें। ज़ेन में कार्य महत्वपूर्ण नहीं होता,वह कैसे किया जा रहा है- होश में या बेहोशी में, यह महत्वपूर्ण होता है।

धर्म व्यक्तिगत रहे तब तक ही धर्म की शुद्धता रह पाती है, समाज का अंग होते ही उसका रूप बिगड़ने लगता है। मोक्ष की यात्रा व्यक्तिगत ही हो सकती है। कोई दूसरा किसी को मोक्ष कैसे दे सकता है? यदि कोई बाहरी यात्रा से मोक्ष प्राप्ति की चेष्टा में असफल हो जाने पर, मार्ग-दर्शन माँगता है

तो उसे अंतर्यात्रा का निर्देश अवश्य दिया जा सकता है। यही कारण है कि ज़ेन धर्म आज भी अपने शुद्ध रूप में बना रह सका है। इसमें मैं को खो देना है और चेतन बने रहना है। इसमें नियम, सिद्धांत क्या करेंगे? न तो गुरू के लिये कोई विशेष मापदंड है और न शिष्य के लिये। जब तक किसी को देखते ही अहोभाव जाग्रत नहीं होता, दिल उसके पैरों में झुक जाने को नहीं होता, सारे प्रश्न तिरोहित नहीं हो जाते, शिष्य गुरू को ढूंढ़ता ही रहता है। गुरू स्वयं ही शिष्य को, दूसरे गुरूओं के पास भेजता रहता है, क्योंकि वह जानता है कि हर व्यक्ति की प्रकृति अलग है और शिष्य को अपनी सी प्रकृति वाला गुरू ही चाहियेगा।

जहॉ 'ना कुछ' बनने पर ज़ोर दिया जाना है, वहॉ अहं के खेल कैसे रहेंगे? खाली दर्पण बन गये तो मोक्ष अभी ही मिल जायेगा। कोई सामान नहीं जुटाना है, न आयोजन करना है। अपने दिमाग को बीच में न लाओ, भूत, भविष्य, स्मृति कुछ नहीं, बस क्षण-क्षण अस्तित्व जो कराये, करते जाओ। किसी की नक़ल नहीं करनी है,न तुलना। जो अंदर है वही बाहर रहे। इतना सीधा-सादा है, ज़ेन धर्म।

हायकू

हायकू काव्य की वह विधा है,जिसमें तीन या चार पंक्तियों में कवि अपनी पूरी बात कह देता है। ज़ाहिर है,बात कुछ चिन्हों में ही कही जायेगी, अत: सीधी-सादी होते हुये भी रहस्यमय लगेगी। यह पढ़ने का नहीं, देखने का मामला लगेगा।तभी इन्हें 'शब्दों की चित्रकारी' कहा जाता है।ज़ेन हायकू का मतलब समझ नहीं आता तो लोग उसे किसी सिरफिरे की रचना कह देते हैं। पर ऐसा नहीं है। ये तो अमनी दशा में, दिल के दर्पण पर पड़े हुये प्रतिबिम्ब हैं- बाहरी दुनिया के। ये तार की तरह हैं- एक शब्द भी गैर ज़रूरी नहीं होता। फिर, तार्किक गद्य की अपेक्षा,

पद्य में दिल की गहराईयों तक पहुंचने की सामर्थ्य अधिक है, व्याकरण आदि का बंधन भी नहीं है।

वैसे हायकू में, प्रारम्भ में, सत्रह अक्षरों का तीन लाईन में, प्रावधान किया गया था। पर, ज़ेन संत हायकू के नियमों के बंधन में कैसे बंध कर रह सकते थे? उन्होंने, मन आया तो तीन की जगह चार लाईनों का भी प्रयोग कर लिया है। अक्सर ज़ेन गुरू हायकू में, जीवन का सार, जो उन्होंने समझा, प्राकृतिक जीव-जगत के माध्यम से, बयान कर देते हैं। उनका मानना है- सब कुछ वैसा ही है,जैसा होना चाहिये। यदि हम अन्यथा सोचते हैं तो दोष हमारी दृष्टि का है।जैसैं-जैसे ध्यान बढ़ता है, विचार कम होते जाते हैं या कि यों कहें जैसे-जैसे विचार कम होते

जाते हैं ,ध्यान बढ़ता जाता है। हायकू के संक्षिप्त होने का कारण भी यही रहा होगा।

हायकू के कुछ शब्द जैसे कि उनकी पहचान बन गये हैं । उनका प्रयोग खुलकर हुआ है ।बर्फ- शुभ्रता, स्वच्छता, पारदर्शिता की प्रतीक बन गई है तो पानी- शांतता व उथल-पुथल का प्रतीक। चंद्रमा- ठंडक पहुंचाने वाले प्रकाश का, सर्व स्वीकार का तो श्वेत व लाल पुष्प शांतता व आनंद के प्रतीक बन गये हैं ।बांस व चीड़ वृक्ष उदात्त भावनाओं को दर्शाते हैं तो जुगनू, भोर का पुष्प व ओसकण क्षणभंगुर जीवन को ,जग में खुशी प्रदान कर, सार्थक बनाने के प्रतीक बन गये हैं ।

अपनी बात

साहित्य में कविता मेरी पसंददीदा विधा है, धर्म में ज़ेन धर्म। कवि गुलज़ार के हायकू पढ़ने के बाद, यह विधा मुझे बहुत भाई। अत: उसके बाद ,पहले रूमी की कुछ कविताओं को संक्षिप्त करके हायकू का रूप दिया और अब ज़ेन हायकू का ज्यों का त्यों रूपांतरण कर रही हूं। कहना न होगा कि यह कार्य हायकू के अंग्रेज़ी रूपांतरों की मदद से ही संपादित किया गया है। जहॉ-जहॉ से मुझे ये हायकू मिल सके, मैंने लिये। कुछ मित्रों ने भी लाकर दिये। मैं उन सबकी आभारी हूं। अलग-अलग अनुवादकों ने

एक ही हायकू का अलग-अलग अनुवाद किया है, जिसमें अर्थ बिल्कुल ही बदल जाता है। और यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि इनका सूत्र रूप, पूरी बात स्पष्ट नहीं करता। इनका आनंद भी इसीमें है। पाठक अपनी समझ से इन्हें समझे। मैंने भी इस विषय में रूचि रखने वाले युवाओं और वृद्धों के मतों को जान कर ही,अंतिम रूप दिया है। उन सबको मेरा बहुत-बहुत धन्यवाद।

सूत्रों को समझना आसान तो नहीं ही होता है। फिर कई बार ये कोई खास अर्थ भी नहीं बतलाते। मित्रों के आग्रह पर,मैंने उनको कुछ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है: हायकू के नीचे ब्रेकेट में एक पंक्ति जोड़ कर। कहीं-कहीं हायकू में ही एक शब्द, स्पष्टता के लिये जोड़ दिया है।

मुझे अनुवाद करने में आनंद आ रहा था। आपको यदि पढ़ने में आनंद आया तो मुझे बहुत खुशी होगी।

धन्यवाद।

19.4.2014 मालती

रह गया वृक्ष का केवल खोल,
जाते समय गा रहा था क्या,
अपना अंतस खोल?

(मृत्यु भी आनंद दे ,तो है जीवन सार्थक)

ताली बजा रहा हूं मैं,
प्रतिध्वनि से उतर रही है भोर,
चांद ग्रीष्म का।

(आनंद की कशिश)

पंछी

दिन भर गाता रहता,

दिन छोटा पड़ जाता।

चांदनी से नहाये फल के वृक्ष,

कुछ और प्रतीक्षा कर लो,

वसन्त आयेगा।

कला का उद्‌गम-
शून्य से उठा,
कृषक का गान।

एक पूर्ण चंद्र,
अगणित तारे,
गहन, हरित गगन।

भूलो न रसभरे बेर
खिले जो
झाड़-झंखाड़ों ही में ।

और एक हायकू?
खिली हैं और चेरियॉ
मेरा ही चेहरा नहीं ।

मकड़ी,
तुम रो रही हो या
पतझड़ की हवा ?

मजार,
झुकी, शरद वायु की ओर-
रो रहा था मैं।

पौ फटते ही
राजमहल के चारों ओर
मची चिल्लाहट बतख़ों की ।

एक ही सराय में
सोईं थीं वेश्याऐं,
फूल और चंदा भी।

समय के बड़े घंटे पर,
रूकी इक तितली
और सो गई।

होते जुगनू भयभीत,
स्व प्रतिबिम्ब देख
पानी में।

चल रहा हूं मैं,
साथ चले मेरी छाया भी,
दृष्टि जमाये शशि पर।

पुकारा इक कोयल ने,
बॉस-कुंज में देखा मैंने,
खिला चंद्रमा।

नव वर्ष के उत्सव दिन भी,
हूं मैं अकेला, ऐसे
जैसे पतझड़ की शाम।

गर्मी की यह नदिया,
खुशी-खुशी कर रहा पार मैं,
जूते लेकर हाथों में।

फेरीवाले के पीछे पड़े
भौंकते कुत्ते,
खिले फलों के वृक्ष तले।

आज भी ,
डूब रहा है सूर्य,
सरसों के पीले फूलों में।

ना वसन्त ना पतझड़ ने ही
छूई है,
फूजी पर्वत की ऊंचाई।

अपने संग ले चलो मुझे भी
हो आज़ाद गुलामी से ,मैं उड़ुं
ओ पतंग मेरी ।

लगा मच्छरदानी देखो,
मच्छर सुन्दर लगने लगते,
चंद्र किरणों में उड़ते।

सागर में तूफान उठा है,
पर, मुमुक्षु को राह दिखाती,
आकाश-गंगा ये नभ की।

ठिठुरते दिन-
सूखी मछली,
कृशकाय यात्री।?

दोस्त बिछुड़े
सदा के लिये- जंगली हंस
बादलों में खोये ।

दक्षिण की घाटी!
लाती है वायु,
सुगन्ध- बर्फ की।

(सुदूर उत्तर से)

कितना सुहाना-
बिन कुहरे के, फूज़ी नग का,
एक बार भी दिख जाना।

मधु, आरक्त पुष्प हृदय से
बाहर निकली -
इक मक्खी मदहोश।

जून की झीनी बारिश,
लम्बे केश,
चेहरा- बीमार श्वेत।

बर्फीली सुबह,
एक के बाद एक कौआ।

(निकल रहा बाहर बिन सोचे)

विषैले कुकुरमुत्ते पर भी
जाने कौन, कहाँ से आई है,
इक पत्ती।

चहचहा रहे बटेर
'घिर आया है अब अंधियारा
क्या उपयोग बाज नेत्रों का ?'

दुपहर झपकी,
मेरे पैरों के सामने की
हुई दीवार ठंडी।

(पलक झपकते ही परिवर्तन)

जलकाग का खेल-मछली पकड़ना,
है कितना दहलानेवाला,
औ उदास करनेवाला!

देखा चहा वसन्त-
भोर के कुहरे में-
हैं कौन से पर्वत - वहाँ?

समय का पंछी-
कर रहा विलाप- क्योटो में
क्योटो के लिये।

चमकीले चॉंद:
मैं घूम रहा, तालाब किनारे,
और आ गई भोर अहो!

आरम्भिक पतझड़ में,
चावल के खेत औ सागर भी
हरीतिमा में एक हो गये ।

नन्हें से फूल बैंगनी ये
बहुमूल्य हैं कितने
इक पर्वत पथ पर।

छोड़ दिया निर्धन बालक ने-
चॉद देखना-
धान कूटने के कारण।

नव वर्ष
बोशो-तोसाई का आश्रम
हायकू की सतत गुंजन।

कितनी निर्मल, उज्ज्वल है- चांदनी,
कभी यदि पुनर्जन्म पाऊं,
पर्वत का पेड़ बनूं।

बांसों के झुरमुट में खोया,
हुई रोशनी चंदा की,
मेरा घर दीखा।

था कितना शैतान शाक्य वो,
बहु लोगों को दिया धकेल,
रहस्यमय उलझन में,
उसने।

झुलसे खेतों के रास्ते,
अस्वस्थ ,पथिक को करते,
स्वप्न, भटकते रहते ।

गर्मी की घास कहती-
होना यहाँ सैनिकों का
जैसे कि महज़ इक सपना था ।

मरणप्राय झिंगुर,
कितना जीवन्त
गान उसका?

है मुझमें ही गुणवत्ता,
यह दिखता पलक झपकते,
जो ना समझ पायें यह,
संत न कहला सकते।

पीने को भोर की चाय,
बैठ गया है भिक्षु मौन,
पुष्प-गुच्छ पर दृष्टि जमाये।

(क्षणिक पुष्प -जीवन भी रूप,रस,गंध बिखेर रहा)

कृपा कर पतझड़ की संध्या
मुड़ आओ मेरी ओर,
मैं भी एक अजनबी हूं।

(अपनापन देते हैं ,नवागंतुक को)

सईस मेरे
मेरा अश्व उस ओर मोड़ दो
जहँ गाते हों पंछी।

(प्रकृति सानिध्य ही आनंद,शांति देता)

बीतते हुए दिन मास
समय के यात्री
सनातन हैं।

(समय कभी ना रूकता)

अमन भूमि में बीज भरे हैं,
अंकुर तब ही फूटेंगे,
जब आयेगी स्वर्गिक बौछार।

(ध्यान के बीज डालते रहो,बस)

है रंग-रूप से परे
समाधि-सुमन,
फिर कैसे संभव है,
उसमें कुछ परिवर्तन?

शशि चलता अपनी राह,ताल है स्थिर
बिन प्रयत्न ही उभय मिलन यह सुमधुर
रहस्य है ,शान्त, निर्मल जल
हिरोशवा का?

बिन बोले जब गुरू उठाता भौंहें,
खम्भे, लट्ठे, तरू-शिखर आदि
सब ही मुस्काने लगते।

(गुरू का मौन दृष्टि भी खुशी बिखेरे)

चोर
छोड़ गया पीछे धन-राशि
खिड़की पर का चंद्र ।

(सच्चा धन तो यही दृश्य है)

जल से भरी अंजुलि तो
शशि छवि हाथों में आई,
चुने फूल जो हाथों में,
वस्त्रों में गंध छाई।

मुट्ठी की पकड़ बढ़ी,
कुछ न बचा कर में,
खोले जो बंध, आया
तत्व पुन: हाथों में।

सॉंध्य शशि,
फूलों की बगिया,
इकतारे पर यौवन उतरा।

(प्रभाव दृश्य का)

प्राचीन ताल,
इक मेंढ़क कूदा,
पसरा मौन ।

(जान व्यर्थ कल्पना, हुआ मन, मौन)

एक पुकार करे आमंत्रित
सौ-सौ साथी,
इक मुस्कान, प्रशंसक लाखों
बनवा देती ।

नन्हीं चिड़िया,
मना सके जो उत्सव,
पुकारे पीत-ध्वनि में,
मात- पिता को।

जल में चंद्र,
टूटता रहता,
फिर भी है वह वहॉ।

(आत्मा पर असर न पड़ता)

भले कर लें सोलह श्रृंगार,
दृष्टिपात जब तक न करे शशि,
सुंदरता न रंग लाये ।

(प्रिय देखे तो जीवन सार्थक)

चंद्रकिरण आगोश में ले लूं,
मेघ यत्न करता,
पानी-पानी हो जाता।

(दूजे को बाँधना ,मरण स्वयं का)

चल रहीं पवन उनचास,
साथी एक अकेला -
नभ में, चंद्र ।

(वही काफी है)

उसकी खोज ने सारी शक्ति हर ली,
थक-हार झुका जब मैं,
अंगुली-संकेत पर दृष्टि पड़ी,
देखा ना था,ऐसा-चंद्र कभी।

बुद्ध
रक्ताभ पुष्प
चंदा की चांदनी में।

(शान्त प्रेम की मूर्ति)

मैदान और पर्वत दोनों को
बर्फ ने कैद किया
कुछ भी तो न बचा।

(मन रिक्त हुआ)

अर्ध-चन्द्र
श्यामल पूर्वी गगन
नाद घंटे का।

(समय ध्यान का)

पीले गुलाब की पंखड़ियॉ
घनघोर गर्जना
पानी का झरना।

(कोमल-कठोर का संग भी सुंदर)

जब भी निश्चित ना कर पाता,
कौन राह है घर जाने की,
राह किसी से भी चल पड़ता,
वही राह घर की बन जाती।

-

बैठा मौन,
करूं ना कुछ भी,
आता बसन्त औ
दूब स्वयं उग आती।

ऐसा है जन्म
ऐसी मृत्यु
कवित्त लिखूं या नहीं लिखूं
मचाई क्यों खुश्की?

मेरे नये चोगे में
आज सुबह
कोई और ही।

(कल का कण भी ना बाकी)

हुबाकू के मैदान औ पर्वत
नौ दिन में
वसन्त।

(धैर्य रखो)

वसन्त की वर्षा-
वृक्षों के नीचे
स्वच्छ झरना।

(बहा ले गई सारा कचरा)

शान्त हुई बिल्ली की म्याऊं,
शयनकक्ष को मिला स्पर्श
चांदनी का।

(कशिश मौन की)

जो मय लाया मेरा प्रशंसक,
चेरी पंखुड़ियों से सजाकर,
पीने का दिखावा करूं ,उसे।

(आत्मिक मय से सराबोर हूं मैं,पहले से)

अगर क्षमता होती मुझमें
गाता मैं ऐसे ,जैसे-
झर रहे हों-गुच्छे चेरी के।

(रंग, रूप, रस, गंध बरसाता)

चेरी के नीचे-
खिल रहा सूप,
खिल रहा सलाद।

(दृश्य सुहाना भूख-प्यास बिसरा दे)

हड्डियॉं बिन चेहरे की,
बिखरी हैं खेत में
काटती है वायु-मांस मेरा।

(वीभत्स दृश्य ने स्वानुभव करवाया)

सर्दी की प्रथम बारिश,
चले जा रहा हूं मैं निरंतर,
यायावर है नाम मेरा।

(चलना ही लक्ष्य है)

देर हो गई, जागो तितली,
राह शेष है बहुत हमारी,
हमसफ़रों की।

(स्वअंतस से वार्तालाप)

घने बादल-
इक मौका हट पाने का,
चॉद देखने से।

(अन्यथा ,कशिश चॉद की हटने ना दे)

चॉदनी से ढ़की घास की झाड़ी-
हिलना ना, समीपस्थ कक्ष में
ले रहीं खर्राटे- गणिकाऐं।

(स्वानंद न विघ्न बने दूजे का)

आओ, देखो-
असली फूल,
इस दर्दीली दुनियॉ के।

(दुःख पाकर भी खुशी बिखरते)

ग्रीष्म के चंद्र-
ताली बजा रहा मैं,
औ सूत्रपात हो गया, भोर का।

(कशिश मुझमें भी है तुझ जैसी)

वर्षा का मौसम-
रेशम के कीड़े
शहतूत से चिपके।

(आशा सुरक्षा की)

मादा बिल्ली,
कितनी दुबली
प्यार और धान्य में।

(ममता ध्यान दूजे का रखती)

बर्फ प्रतीक्षित कवियों ने,
देखी निज-निज प्यालों में,
क्षण भर को विद्युत-रेख चमकती।

(दूजे ही रूप में आया वो)

बुद्ध का मृत्यु-दिन -
वृद्ध हाथ,
फेर रहे हैं- माला।

(अभी भी)

वर्ष का अंत,
सारे कोने बह गये
तैरते जग के।

(मुक्त हो गया मैं)

पतझड़-
पंछी औ मेघ भी
दिखने लगे हैं वृद्ध।

(जग प्रभाव से मन मौसम परिवर्तित होता)

एकाकीपन-
पिंजरे में बंद झिंगुर
भित्ती से लटक रहा ।

(जब निज क्षमता -उड़ना भूला)

कीट का गान-समापन,
सर्द ऋतु का उपवन,
दूज का चंद्र।

(मरण-जीवन है ध्यान का क्षण)

गिरते हुए ओलो-
पुराने बलूत वृक्ष जैसे
मैं भी नहीं बदलता।

(तव प्रयास व्यर्थ होगा)

इक-दूजे में प्रतिबिम्बित,
श्वेत कमलिनी,
पर्दा कागज़ी ।

(आसां है हटाना -पर्दा)

ऐसी सुगन्ध-
कहाँ से,
किस वृक्ष की ?

(खोजो)

हूं , अधीर मैं कितना ,
नव प्रभात के पुष्पों में,
प्रभु मुख दिख जाय मुझे!

(मन न कामना छोड़े)

जब वृक्षों की चोटी पर,
हुआ चँद्रमा अस्त,
पत्तियॉ लिपट गईं वर्षा से।

(कुछ भी न मध्य में आये अब)

समुराई की बातें-
अश्वमूल का
तीखा स्वाद ।

(करे जोश संचार)

तुम हो तितली,
मैं, चुआंगत्ज़ु का
स्वप्निल दिल।

(रंगों का साम्य)

कैसा भाग्योदय आकस्मिक ?
बाज ने खोजा केवल,
अंतरीप के ऊपर।

(मछली को ,समुद में झुकते हुए शिखर पर)

ओस की बूंदों-
कितना अच्छा है बहा देना-
दुनियॉ की धूल।

(परमार्थी हो)

मैदानों और पहाड़ों में
हिले न कुछ भी
इस बर्फीली भोर में ।

(शांत स्थिर हो जाऊं मैं भी)

भोर की निर्मल श्वेत बर्फ में
घुल खो जाते श्वेत पक्षी
चिल्लाहट रोक बनी उनकी ।

(मौन मिलन की है कूंजी)

दिखें विशेष सामान्य अश्व भी
है चमत्कार
बर्फीली भोर का ।

(प्रभाव वातावरण का)

वासन्ती वर्षा में
सभी कुछ लगता, उगता
सुन्दर ही ।

(सद्य- स्नात सा)

बेला है भोर की
श्वेत पुष्प- गुच्छ ये लगते
निज आकृति से बड़े ।

(रवि स्वागत में हाथ बढ़े)

अपना उपवास तोड़ता मैं
खिले भोर फूलों
के मध्य ।

(रहूं खिला उनकी ही तरह)

भर जाती ताज़गी तन-मन में
जब देखूं प्राणी लगे कर्म में
सुबह-सुबह ही ।

(कर्मयोग आनंद ,कर्मठता लाता)

फूलोद्यान के माली मेरे
सेवक बन गये हो
तुम उसके ।

(सेवा-भाव से पूर्ण समर्पित हो)

पतझड़-सर्दी युति वायु बही,
दिनों-दिन ये बतखें जंगली,
सुन्दरतर होती जातीं ।

(खुशनुमा वातावरण का प्रभाव)

पहली बर्फ गिरी
इतने हौले से, कि मुड़ी
फूल-पत्तियें ज़रा ही ।

(करूणापूरित ह्रदय)

करता रहा मैं घृणा हमेशा
जिस काले कौए से ,
पर,बर्फीली भोर में. . .

(दृष्टि बदल गई मेरी)

यदि मैं होता सम्राट
किसी परित्यक्त द्वीप का,
तो अच्छा होता ।

(अपने में डूबना आसां होता)

जल-पक्षी जब हों ज़मीन पर
भारी दिखते,
निज स्थान में सहज तैरते ।

(तत्वों से समता हल्कापन, खुशियॉ लाता)

भोर-पुष्प की भाँति
क्षणिक है मेरा जीवनय
आज अभी है...फिर...?

(ना जानूं)

आज सुबह की बर्फ ने
रूप मेघ का लिया
दोष है समीपस्थ बसंत का ।

(स्वयं संचालित कार्य-चक्र प्रकृति के)

भोर की शुद्ध ओस का,
है ना कोई उपयोग,
इस दुनियॉ में ।

(हम भी हैं वैसे ही)

आह. .भोर के पुष्प. .
तुमने भी
हरा दिया मुझको ।

(मैं वृद्ध अभी तक बैठा हूं)

नेत्रों में बसाऊं दृश्य अनूठा,
नये वर्ष के नव दिन ही,
इस कारण फूजी पर्वत मैं न गया ।

(वर्तमान में ,मैं ना जीता)

बिन यात्रा औ
बिन बसंत के
दिख ना पाती यह भोर मुझे ।

(अकर्म न दे सकता कुछ भी)

गिरा धूल में पुष्प एक,
निज स्थान पर उड़ी पुन:
इक तितली ।

(संग मरे ना कोई)

बिना तूलिका
चित्रित करता बेंत वृक्ष,
वायु को ।

(वृक्ष में वायु से होते कंपन)

ग्रीष्म घास में
पड़ी हैं कब्रें,
सागा सुंदरियों की ।

(यही अंत है सबका)

दिन में देखें तो
लगता जुगनू,
लाल गले का कीट मात्र ।

(पर रात्रि को रौशन करता)

डूबे मस्तूल जहाज़ों का
वासंती जल सागर में,
आनंद हिलोरें लेता ।

(अंतस आनंद ना कुचल सके कोई)

जब बेरी खिलतीं,
मेरे दिल में भी
सुंदरता ले आतीं ।

(प्रकृति सतत देती,बस हो झोली खुली)

बादल आते, बादल जाते,
रंगीन पत्तियों के ऊपर से,
पड़ीं जो झरने के अंदर ।

(धूप-छॉव का खेल सतत ही रहता)

पत्थर औ पेड़ दोनों से,
चमक चुभे ऑखों में,
इस गर्म ऋतु में ।

(पहुंचा सके न कोई ठंडक ,अंतस की गर्मी में)

है पुल गर्मी की नदिया पर,
पार करें उसको घोड़े, पर
पानी में तैर कर।

(कुछ पल के लिये तन-मन को आनंद दे लें)

- **एक बादल फूलों का,**
- **एक घंटा ध्वनि करता,**
- **यहॉ या कि है वहॉ?**

(कहीं भी आनंद हो, वहीं अहोभाव है,धन्यवाद है)

वसन्त की ठंडी बयार ,
मस्ती से पीता सिगार,
यात्रीजन की करे प्रतीक्षा, नाविक।

(ना है कोई शिकायत)

गर्मी की घास कहती,
होना यहॉ सैनिकों का,
जैसे कि महज़ इक सपना था।

(जीवन नहीं रूकता)

यह रात्रि पंछी चकोर
बेंत वृक्ष के पीछे,
कुंज वनों के आगे।

(हर ओर पुकारे पिव को)

पर्वत पर उगे फूलों को देख
नि:शब्द हुआ मैं, कह पाया बस यह-
ओहो...ओहो...

(कठोरता में ऐसी कोमलता)

कठफोड़वा खोजे
मरे वृक्ष को,
खिले हुये वृक्षों के बीच।

(जीवन मृत्यु हैं संग- साथ)

अनजाने वृक्ष के पुष्प
भर रहे मुझको,
अपनी सुगन्ध से।

(फैली है गंध औ नासापुट हैं मेरे शांत, खुले)

ओ तितली !
फड़फड़ करते ये पंख कह रहे,
देख रही हो स्वप्न कोई।

(तन की हलचल मन का हाल बताती)

महान् बुद्ध!
सो रहे हों तो भी
पूजा औ धन पा जाते।

(सामान्य संत को ,कोई न पूछे)

जब तक वे घर से दूर रहे,
ढ़ेर लग गये पत्तियों के,
देवों के उपवन में।

(दूर बैठे ,निज घर भी ना संभाल पाये)

पतझड़ की पत्तियॉ सिंदूरी,
सब्ज़ धान के लहराते
खेतों के समक्ष हुईं पीली।

(यौवन का चढ़ाव और उतराव)

वृक्षों के बीच से होकर जातीं,
चिड़ियों के पंख झुलसाये,
इन लाल पत्तियों से।

(पत्तियों की लाल झॉंई पंखों पर पड़ रही है)

ओह पत्तियों, पूछो वायु से,
तुममें से कौन,
गिरेगी पहले?

(क्या वायु जाने ?)

चुकी चिल्लाहट सारी,
कुछ न रहा अब बाकी,
पड़ा भँवरे का खोल खाली।

(आत्मा निकल गई , तन से)

इस राह पर कोई अन्य नहीं,
बस मैं ही हूं,
इस पतझड़ की शाम।

(मरण-क्षण आ गया मेरा)

पर्वतीय झरने ने,
चावल से भूसा अलग किया,
जब तक ली एक नींद मैंने।

(प्रकृति मित्र है, सबकी)

प्राचीन सदी की वायु बहती,
गिरी पत्तियों में,
उपवन की।

(आदिकाल से नाता अब भी)

थी मई मास की वर्षा फुहार,
दिखा चंद्र,चीड़ वृक्षों के मध्य,
जैसे कि कोई रहस्य।

(क्षण भर ही कौंधे, जग रहस्य भी)

चंदा की रोशनी में,
खिले थे फूल वहाँ,किंतु
वह था केवल, रूई का खेत।

(पर प्रकाश से रोशन होना भ्रम है)

पतझड़ का चंद्र,
चमक रहा है इतना तेज़,
इसलिये लिखी यह कविता।

(भर गया रोशनी से मैं)

कुछ गॉवों में समुद नहीं
औ कुछ गॉवों में फूल,
पर, देख सकें सब आज रात्रि का चंद्र।

(बहानेबाज़ी व्यर्थ है)

हाथ-पैर चाहे कितना मारे,
छूटे ना कैदी ऑक्टोपस,
स्पष्ट चॉंदनी में भी।

(स्व-तन विचार देवे ना शॉंति)

पड़ीं फुहारें वर्षा की तो
हुआ है ठंडा,
ज्वालामुखी पर्वत का लावा।

(शॉंत करे क्रोधाग्नि को, करूणा ही)

स्वच्छ हुआ नभ तो
चंदा औ बर्फ सभी,
रंग गये एक रंग में ही।

(स्वच्छता ले आती पारदर्शिता)

रात के अंधियारे सागर में,
जंगली बतख़ों की आवाज़ें,
हैं धीमी औ भयपूरित।

(बलवान भी डरे अंधेरे से)

रहूं देखता चंद्र हमेशा,
लगातार बिन थके,
कोई दो,इक बार नहीं।

(सत्,सुन्दर से मन ना उखड़े)

उठते हैं पर्वत ये
सब्ज़, नील गहराये
अंत्यकूप से ,आंखों में अश्रु छाये।

(कब ऊपर उठ मिल पाऊंगा)

वह
वन में आता
पत्ती न हिलाता,
पानी में जाता
तरंग न उठाता।

देखा उसका चेहरा
एक ही बार
बस गई याद,
जन्मों तक।

(हुआ था प्रभावित अंतस)

खुद ही बँटता
खुद ही बरसता,
अब सब ही कुछ
खुद ही होता।

(छोड़ दिये अब सारे यत्न)

निरंतर वर्षा- सर्दी की,
ज़रूरत है
बंदर को भी,
इक रेनकोट की।

(तन-मन के सतत थपेड़ों से हो राहत)

जंगली बतख़ों ने खा डालीं
अन्न की नर्म बालें मेरी
लेकिन मैं देखूं उनको जाते ।

(प्रकृति सभी का है -घर)

बुद्धत्व कभी ना बदले
हो चाहे दिवस या रात्रि,
जन्म या कि हो मरण।

मुट्ठी में बाँधना खोना है
औ गल़त राह पर चलना है,
खोलो मुट्ठी तो स्वत: जान लो
सार तत्व को कहीं न जाना
और कहीं ना टिकना है।

शोक कर रहा कवि
कंपकंपाते बंदरों का,
पतझड़ की वायु में निकले-
बालक बंदर का क्या होगा?

(मैं भी हूं अबोध)

कविता से पगलाया मैं,
चिकुसाई की भांति
लकीरें खींच रहा हूं,
वायु में।

(स्वान्त:सुखाय करना मेरा)

मेरे घर में एक गुफा है,
निपट शुद्ध इकदम खाली,
रवि सम प्रकाश से सदा,सतत
तेजोमय रहने वाली।

(हो अंतस खाली तो प्रकाश स्वयं भर जायेगा)

मेरा वृद्ध-तन
घास-पात खाकर रह लेगा,
फटे वस्त्र से ढ़ंक जायेगा,
लाखों संतों को मेरे सम्मुख आने दो,
सत्य बुद्ध मुझमें उनको दिख ही जायेगा।

दूंगा मैं सलाह न तुम घर जाना,
जाओ तो,'ताओ है स्थिर' नहीं भूलना,
खोदेगी, इक वृद्धा पड़ोसन
तुम्हारे बचपन की स्मृतियॉ।

(बीती बातों का असर न होने देना)

आधी खुली खिड़की,
पूर्ण चंद्र औ बहती वायु,
दिलों के परस्पर बतियाने की
जगह अनोखी।

(फिर इकलापन कैसा)

उगता है सूर्य तुममें,
लटका है चंद्र तुममें,
टिमटिमा रहे हैं तारे,
तुम्हरे अंत्य नभ में।

(निज अंतस में गड़े खजाने)

जब से जग संगीत रूका,
कोई छाया न छुए मन को,
फिर से, गॉव का चंदा मामा,
नदिया के ऊपर दीखे।

(शून्य मन ही सुंदरता देखे)

ताड़ वृक्ष पर चंद्र,
कभी लटकाऊं,
कभी हटाऊं,
यह ही देखे जाऊं ।

(दिखा चंद्र तो भी न कल्पना हटी)

रोओ, रोओ, अश्रु बहाओ,
आनन्दाश्रु बहने के बाद,
ना शोक मनाना-
श्वेत हो गये केश मेरे।

(रखना धैर्य, मिलन क्षण शीघ्र न आता)

थम रही है वायु,
फूल अब भी गिर रहे,
चिड़ियें चिल्ला रहीं,
है गिरि नि:शब्द रे,
मौन गहरा रहा रे।

(वातावरण का असर)

जब आये भोर की बेला,
लौटे वही चमकता तारा,
सर्द रात में ,गिरी -शिखर पर
आती बर्फ प्रतिवर्ष ।
ऐसे ही गौतम आते,
स्थान विशेष हम मूढ़ बनाते।

प्रपात ध्वनि की शिक्षा में,
पर्वत रंगों की शुद्धता में,
उतरे थे कल रात, मुझी पर
गीत हज़ार-हज़ारों,
पर,आज भला कैसे बोलूं,
उनके बारे में?

मत पूछो क्यों चीड़ वृक्ष
सामने के उपवन के,
हैं टेढ़े और गंठीले।
जिस सीधे,अक्खड़पन को ले जन्मे थे,
बसा हुआ है वह अब भी
उनके अंतस में।

अंतस में ना है द्वार कोई
फैला खाली विस्तार, खुला आकाश।
वह असीम नभ सी अनुभूति
ही विश्वास दिलायेगी,
अस्तित्व तुम्हारा है-
शाश्वत- मृत्यु के पार।

चित्र हू ब हू ना बन सकता,
वायु में खिले फूलों का,
रखो तूलिका परे,
पास जा देखो-
पृष्ठभूमि के खालीपन में,
आकार रूप लेता।

कूल की ऊंची, गहरी पर्वत चोटी,
जल का द्रुतगति से उठ-गिर उससे मिलना,
हर जगह मिलन का है अपना-अपना अंदाज़।
देखें नित पर समझ न पायें,
भ्रम के आरामगाह से जन
क्या, कभी न मुक्त हो पायें?

गा रहे मेरी खिड़की के सामने,
कोमल हरित बॉस के वृक्ष,
पड़ती जब रिमझिम फुहार,
सी-सी ध्वनि करते सब्ज़ पंख,
आते, छा जाते मेरी मेज़ पर।
जानें वे सुरक्षित, शुद्ध स्थान,
यहाँ और नहीं है।

गुणवत्ता औ करूणा मिल
इंसां की सत्यनिष्ठा बतलातीं
बाहर से जो कुछ आता वह
अंत:निधि ना होती।
दिल से फैंक सारा गट्ठर,
खाली हाथों आते जब तुम,
मोक्ष उतर आता।

खड़ी चट्टान से लटके हो,
अब जाने भी दो, छोड़ो,
वर्तमान से इकमत हो,
वह अनुभव गहराने दो।
मेट पुराना पल, जीवन को
पुन: प्राप्त कर लोगे,
गुरू से भी ना बहकोगे।

तीन,दो,एक, एक,दो,तीन
कैसे,कब उघाड़ पाओगे -
रहस्य ज़ेन के तुम?
वर्षा के बाद मेरी छत पर,
पंछी वसन्त के, हैं अति व्यस्त,
नित नूतन ध्वनियों से वे,
अंतस की खुशी करते ज़ाहिर।
चा चीं चीं चीं चा चीं चीं चीं

विस्तृत नभ में मेघ उभरते,
बैठ शान्त, देखूं वसन्त के
सब्ज़ गिरी औ श्वेत केश,
दुहुं ओर घने हैं बॉस पेड़।
मीलों तक पसरे भू औ नभ,
शुभ्र पुष्प बरसें सब ढ़ब,
चित्रलिखे से आते ये सब
ज़ेन संत के नेत्र समक्ष।

धर्म प्रपात सूखे न कभी
बहे जा रहा है अब भी,
इक बूंद गिरी,फैली दूर तक गहरी।
किनारों, परकोटों की सजावट में ही
ना खो जाना,
गहन रात्रि में चमकेगा
तालाब मध्य ,वह चॉद
देखना।

सोया था पास ठंडी खिड़की के,
आया लौट सपनों के देश से,
स्वत: खुल गई मन की आंख,
बिना भोर तारे के।
धरती औ आकाश ने घेरा,
बर्फ से ढ़के पर्वत को,
शाक्य मुनि अभ्यास कर सकें
कहॉ जगह है, उनको?

रूई ढ़ेर सम श्वेत मेघ,
मम गुहा द्वार पर तैरें,
धर्म मित्र मेरा दे दस्तक,
तब न राह वे रोकें।
निज अकर्म को छुपा सकूं,
वह पथ न खोज पाया था मैं,
ले हाथ में हाथ, चलें प्रतिदिन
आगे-पीछे ,वो और मैं।

फिक्र और चिंता का भार ,
मेरे सीने से दूर हुआ,
हंसी-खुशी से अब मैं
संसार विलग सा खेल रहा।
ज़ेन की राह के राही की,
होती ना कोई सीमा ,
नील गगन शरमाता होगा-
“हूं असीम, यह सच ना”।

खिलता है उदुम्बर वर्षों में,
निज पुष्प दलों के साथ
भारत से चीन लाने में,
दिया बहु लोगों ने साथ।
अगणित वन,उपवन,घास मध्य चलकर भी,
बिन विरल हुए औ बिन खोये,
अब तक तेज़ गंध उसकी
वायु को रही महका।

पर्वत की श्रृंखला,पानी,पत्थर
हैं सभी अल्प आश्चर्य भरे,
सुन्दर परिदृश्य ये उनके हित,
होते हैं जो उन ही जैसे।
उच्च सृष्टि औ निम्न सृष्टि का
मूल रूप है एक
है ना जहॉ धूल का कण भी
बस जागृत स्थिति ही फैली
स्थिर,शान्त,पूर्ण,निर्लेप।

जहॉ कुछ नहीं होना था,
वहॉ बहुत कुछ होता है,
झौंपड़ी न होती कार्यक्षेत्र बाज़ारों की।
इन गहरी वन कुटियायों में,
सॉझ पड़े वर्षा से बचने ,नग पंछी आ जाते।
चट्टानों के बिस्तर पर
बादल से बूंदें टपक बनातीं,
नक्काशी ,फिसलती काई से।
तैरता विश्व बस है स्वर मात्र,
तलवार मूठ पर उभरा जो,पद-पैसा औ नाम-
धाम वैसे ही बिसर गये मुझको।